सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे....

(कविवर पण्डितश्री भागचन्दजी)

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे, आतम रूप अबाधित ज्ञानी ।टेक ॥

रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानि।
दहन दहत जिमि सदन[1] न तद्गत, गगन दहन ताकी विधिठानी[2] ।।1 ॥

वरणादिक विकार पुद्गल के, इनमें नहिं चैतन्य-निशानी।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ।।2 ॥

मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत्[3] लीला ठानी।
मिलो निराकुलस्वाद न यावत, तावत परपरणति हितमानी ।।3 ॥

भागचन्द, निरद्वन्द निरामय[4], मूरति निश्चय सिद्ध समानी।
नित अकलंक अबंक संग बिन, निर्मल पंक[5] बिना जिमि पानी ।।4 ॥

---

१. जिस तरह जलती हुई अग्नि मकान को जला देती है; २. उस तरह आकाश को नहीं जला सकती; ३. सम्पूर्ण प्रदेशों में; ४. रोगरहि; ५. कीचड़